शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 अप्रैल 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

कविकर्णपूर विरचित आनन्दवृन्दावनचम्पू में भक्ति

कु. भारती
शोधार्थी (संस्कृत)
वनस्थली विद्यापीठ
राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

भक्ति शब्द भज् सेवायाम धातु से क्तिन प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ है। जिसका सीधा अर्थ है भजना या स्मरण करना। विविध शास्त्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि भक्ति में ज्ञान और योग आदि की साधन की सरलता है व प्रभु के शीघ्र प्रसन्न होने की सम्भावना भी। साधना के अन्य मार्गों की तरह यहाँ अधिकारी का होना अनिवार्य नहीं है, क्योंकि ईश्वर भक्ति के आधीन है। यह भक्ति अन्य साधन निरपेक्ष होने के कारण श्रेष्ठ है। आचार्यों ने भी भगवदुपलब्धि के अनेक साधनों में भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि यह अपेक्षाकृत सहज और सुलभ है।

प्रस्तावना

साधना के क्षेत्र में भक्ति का विशेष स्थान है। भक्त अनेक प्रकार से भगवत्प्राप्ति का प्रयास करता है। भक्तों में सायुज्य, सामीप्य और सारुप्य भक्ति का विशेष महत्व है। भक्ति का उदय श्रद्धा से हुआ है। श्रद्धा वैदिक यज्ञों की अधिष्ठात्री देवी कहा जाती है। परमात्मतत्वरूपी भगवान से मिलने का सर्वोत्तम उपाय भक्ति है, भक्ति भगवान के प्रति अखण्ड व अव्यवहृत प्रेम है। भक्ति का लक्षण इस प्रकार से किया गया है:

तत्रादौ सुष्ठु वैशिष्ठयमस्या कथयितुं स्फुटम।
लक्षणं क्रियते भक्तेरूत्तमायाः सतां भतम।।1

इस भक्ति को भलीभांति कहने के लिए सबसे पहले उत्तमा भक्ति का स्फुट लक्षण किया गया है जो सत् पुरूषों को मान्य है। श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में भी भक्ति के विषय में कहा गया है -

अहैतक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरूषोत्तमे।।

अहैतुकी अर्थात् हेतु रहित और अव्यवहित अर्थात् व्यवधानरहित जो भक्ति पुरूषोतम में होती है।2 इस प्रकार भक्ति योग नाम का अत्यन्तिक अर्थात् सबसे उत्तम योग कहा गया है।

आनन्दवृन्दावनचम्पू में भक्ति

इस प्रकार भक्त कवियों की काव्य परम्परा में नवधा भक्ति मानी गयी है। श्रीमदभागवत् में भक्ति की महिमा का उल्लेख करते हुए श्रीवेदव्यास ने नव प्रकार की भक्ति मानी है, जिसे नवधा भक्ति के रूप में जाना गया है। 1 श्रवण, 2 कीर्तन, 3 स्मरण, 4 पादसेवन, 5 अर्चन, 6 वन्दन, 7 दास्य, 8 सख्य, 9 आत्मनिवेदन ये नवधा भक्ति है -

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेनवम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदम्।।3

श्रवण भक्ति - नवधा भक्ति में प्रथम भक्ति है श्रवण भक्ति। यह सभी प्रकार की भक्तियों का मूल आधार है। श्री भगवान के चरित्र एवं गुणादि के क्षवण का नाम ही श्रवणभक्ति है। कर्णपूर जी ने अपने ग्रन्थ 'आनन्दवृन्दावनचम्पू' में कहा है कि ब्रजवासी श्रीकृष्ण जन्म से लेकर कंसवधादि पर्यन्त जो-जो सुन्दर चरित्र है उनका गान कर

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

अतिशय सुख प्राप्त करते हैं। इस प्रकार समस्त ब्रजवासियों को भी श्रीकृष्ण की लीलाओं का गान करने में ही परम आनन्द की प्राप्ति होती थी। श्रीकृष्ण की निर्मल भक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरूष नित्य निरन्तर उन्हीं के अमंगलहारी गुणानुवाद का बार-बार श्रवण करें।

कीर्तन - श्रवण भक्ति का सजह विकास कीर्तन में होता है। कीर्तन का शब्दार्थ - कीर्ति फैलाने की क्रिया। भक्ति के कीर्तन का तात्पर्य है - भगवान के नाम लीला, गुण आदि का श्रद्धापूर्वक सस्वर उच्चारण कथन विवेचन आदि। 'आनन्वृन्दावनचम्पू' में भगवान के साथ विशिष्ट सम्बन्ध की पुष्टि प्रेम विशेष का कारण मानी गई है। भगवान के प्रति की हुई प्रेमपूर्वक भक्ति प्राणियों को परमधाम की प्राप्ति कराने वाली होती है। श्रीकृष्ण चन्द्र का गुण कीर्तन है, कवि लोगों ने उसी को तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञ, मंत्रपाठ, ज्ञान और दान के नित्यफल का वर्णन किया है अर्थात् श्रीहरि के गुणों का कीर्तन ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है।4

स्मरण - नवधा भक्ति का तीसरा सोपान 'स्मरण' होता है स्मरण तो श्रवण और कीर्तन में हो होता है, क्योंकि वह स्वाभाविक ही है। 'आनन्दवृन्दावनचम्पू' में स्वयं श्रीकृष्ण ने स्मरण की भक्ति की महिमा का वरदान देते हुए गोपियों से कहते हैं - "अशेष वृत्तियों से रहित मन जब तुम मुझ कृष्ण में लगाकर मेरा नित्य स्मरण करोगी तो अतिशीघ्र ही मुझे प्राप्त करोगी। इस प्रकार श्रीकृष्ण स्वयं अपनी लीलाओं के स्मरण से ही अपनी प्राप्ति बता रहे हैं। जो गोपियाँ ब्रज में रात्रि में सभापति आदि के द्वारा घर पर रोक लिए जाने के कारण रास को प्राप्त नहीं कर सकी थीं, उन्होंने प्रभु श्रीकृष्ण लीला के स्मरण से ही उन्हें प्राप्त कर लिया था। ये ब्रजगोपियाँ सदैव अपने अन्तःकरण में श्रीकृष्ण के रूप, गुण एवं नाम की ही सैकड़ों प्रकार की स्मृति किया करती थीं।5

पादसेवन - नवधा भक्ति में चौथी भक्ति पादसेवन। पादसेवन का सीध और प्रमुख अर्थ है - भगवान की चरणों की सेवा। इसलिए इस भक्ति की प्रधान अधिकारीणी भगवती लक्ष्मी मानी जाती है। आनन्दवृन्दावनचम्पू में भगवान के चरणस्पर्श के प्रताप का इतना महात्मय बताया गया है कि ऐसा करने से गोपियों के लिए समस्त जगत तुच्छ मात्र होकर रह जाता है।6

अर्चन - नवधा भक्ति में पांचवी भक्ति है - अर्चन। अर्चन का सीधा अर्थ है - पूजा करना। श्रीकृष्ण के चरणों का पूजन मनुष्यों के लिए स्वर्ग, मोक्ष, इस लोक की सम्पत्तियों, भोग एवं अणिमादि सब सिद्धियों का मूल कारण है। भगवती पौर्णमासी श्रीकृष्ण के आने पर पाद्य अर्घ्य एवं आसनादि के द्वारा उनकी पूजा करती है।7

वन्दन - नवधा भक्ति में छठी भक्ति है - वन्दन। वन्दन का अर्थ है - नमस्कार, अभिवादन, चरणस्पर्श आदि। वन्दन भक्ति के विषय में तुलसीदास जी ने कहा है -

राम सो बड़ो है कौन मो सो कौन छोटो।
राम सो खरो है कौन मो सो कौन खोटो।।8

इस प्रकार से दोनों भावों को प्रकट करते हुए प्रभु की महिमा और अपनी तुच्छता को कहते हुए वन्दन करना चरणस्पर्श करना आदि वन्दन के अन्तर्गत ही है।

दास्य - श्रवण से वन्दन तक की भक्तियों में क्रिया मुख्य है और भावना गौण। इसलिए इन्हें स्पष्टतः साधन भक्ति कहा जाता है। साधन भक्ति में साध्यभक्ति, प्रेमा और पराभक्ति बनाने का जो आन्तरिक सामर्थ्य है। उसका

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

आभास दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन के द्वारा होता है। श्रीरूपगोस्वामी के अनुसार दास्य की परिभाषा इस प्रकार है - दास्यं कर्मार्पणा तस्य कैsकर्ममापि सर्वथा।9 अपने समस्त कर्म और उनके फल प्रभु को अर्पित कर उनकी आज्ञा एवं प्रसन्नता के अनुकूल उनकी सेवा करते हुए जीवन यापन करना ही दास्य है। आनन्दवृन्दावनचम्पू में ब्रजगोपियाँ अपने को श्रीकृष्ण को दासी बातती है।

सख्य - भगवान में अटल विश्वास और उसके साथ मित्र का सा बर्ताव इन दोनों को सख्य कहा गया है तात्पर्य यह है कि प्रभु से निर्भयता पूर्वक अपने मन की गुप्त से गुप्त बात कहना और उनका तदनुकूल विश्वास युक्त स्नेह प्राप्त करना ही सख्यभाव है। आनन्दवृन्दावनचम्पू में श्रीकृष्ण अपने मित्रों के साथ वन में दोपहर का भोजन करते हुए सखाओं को हंसाते हैं और स्वयं भी हंसते हैं।10

आत्मनिवेदन - मनुष्य जब तक कर्मों को छोड़कर ईश्वर में ही आत्मा को अर्पण कर उनकी ही आराधना की इच्छा से सब करता है। वह आत्मनिवेदन भक्ति है। आत्मनिवेदन के बाद भक्त भगवान के दिव्य स्वरूप का निरन्तर दर्शन करता है। ब्रजवासियों की बाहरी - भीतरी की सम्पूर्ण कृर्तत्व मनसा, वाचा, कर्मणा इत्यादि जो चेष्टाएँ हैं वे श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए उन्हीं को निमित्त मानते हैं।11

निष्कर्ष

इस प्रकार से कविकर्णपूर द्वार विरचित आनन्दवृन्दावनचम्पू में नवधा भक्ति का उल्लेख किया है। भक्ति से सर्व सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। भागवत्कार कृष्णद्वैपायन कहते हैं कि जिस प्रकार प्रज्जवलित अग्नि में समर्पित काष्ठ पुंज भस्म हो जाता है, उसी प्रकार भक्ति मनुष्य के सभी पापों को नष्ट करने में समर्थ है।

संदर्भ ग्रन्थ

1.भक्तिरसमृत सिन्धु, श्रीरूपगोस्वामी, प्रो. प्रेमलता शर्मा, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीयकला केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1998

2.श्रीमद्भागवान, भगवानदास लाहोरी, अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, प्रथम संस्करण-2004

3.आनन्दवृन्दावनचम्पू, श्रीकविकर्णपूर, गोपेश्वर रोड़, वृन्दावन, 1974

4.विनय पत्रिका 72/3/4

5.गोपालचम्पू, श्रीजीवगोस्वामी, श्रीकृष्णानन्दस्वर्गाश्रम, वृन्दावन, 1968